शब्द–ब्रह्म
ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जून 2014

हिंदी साहित्य में व्यंग्य की भाषा

आरती सेन (शोधार्थी)
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली , भारत

शोध संक्षेप

यदि निबंध गद्य की कसौटी है तो व्यंग्य को निबंध की कसौटी कहा जा सकता है। व्यंग्य अपनी व्यंजनापूर्ण वक्र शैली के कारण साहित्य की सभी विधाओं का सिरमौर बन गया है। किसी भी रचना का प्रभाव और सार्थकता उसके भाषा-तंत्र पर निर्भर करता है और व्यंग्य की भाषा में वह धार है जो समाज की बुराईयों को काटने का काम बखूबी कर सकती है। इसलिए कुछ विद्वान इसे कुनैन का तीतापन और तेजाब की दाहकता कहते हैं तो कुछ इसे साहित्य के अंदर परमाणु युग की संज्ञा से अभिहित करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्न व्यंग्यकारों की रचनाओं में व्यंग्यात्मकता का अध्ययन किया गया है।

भूमिका

भाषा एक ऐसा सांचा है जिसमें मानवीय अनुभूतियाँ या फिर साहित्य की कोई भी विधा डाल दी जाए वह उसका रूप धारण कर लेती है। भाषा का यह रूप साहित्य की विविध विधाओं में ढलकर कभी सहज सरल होता है , तो कभी यह अपने अंदर गहन गांभीर्य को समेटे हुए होता है तो कभी हास्य से लिपटे व्यंग्य के आवरण में छिपा होता है। लेकिन जब यह भाषा व्यंग्य का रूप धारण करती है तो वह और भी तेवर लिए हुए तीक्ष्ण बन जाती है। सामान्य भाषा , काव्य भाषा , साहित्यिक भाषा से व्यंग्य की भाषा भिन्न होती है । व्यंग्य की भाषा अपने समय के सत्य के प्रति प्रतिबद्ध होती है और व्यंग्यकार की यह प्रतिबद्धता उसे शोषकों के विरूद्ध और शोषितों के साथ खड़े होने के कारण आती है। इसलिए उसे अपनी बात कहने के लिए भाषा के बनाव-श्रंगार की आवश्यकता नहीं पड़ती है अपितु वह तो अपनी बात को कटु कभी तिक्त तो कभी प्रहारात्मक मुद्रा में कहकर अपनी अन्याय के प्रति अपना विरोध दर्ज कराता है। इसलिए व्यंग्य की भाषा अपने कथ्य की अभिव्यक्ति में सशक्त होती है। व्यंग्यकार जब सामाजिक, आर्थिक , राजनीतिक , शैक्षिक , सांस्कृतिक राहों से होता हुआ समाज का अध्ययन करने की कोशिश करता है तो वह अप्रत्यक्ष रहने वाली विसंगतियों को प्रत्यक्ष करने हेतु व्यंग्य की भाषा का संधान करता है। इसलिए व्यंग्य की भाषा कभी हास्ययुक्त तो कभी बखिया तक उधेड़ देने वाली मारक क्षमता लिए होती है।

व्यंग्य की भाषा में एकरस प्रवाह नहीं होता है बल्कि उसमें लाक्षणिकता और व्यंजना अधिक होती है। इस प्रकार व्यंग्यकार अपने विशिष्ट भाषिक प्रयोगों से अपनी बात में रोचकता के साथ-साथ एक संप्रषेणीयता भी लाता है जिससे पाठक वर्ग सहज ही जुड़ता चला जाता है। इसके

लिए व्यंग्यकार कभी- कभी शब्दों को तोड़ता मरोड़ता है , कभी शब्दों को हिलाकर बजाकर उनमें नए अर्थों की ध्वनि को सुनने का प्रयत्न करता है। इसके लिए कभी- कभी लेखकीय छूट का भी प्रयोग करता है। इसके कारण कभी -कभी भाषा की संरचना भी टूट जाती है। भाषा की यह संरचनागत टूटन लेखक की अभिव्यक्ति को और भी अधिक संप्रेषणीय बनाने का तो काम करती ही है साथ ही भाषा के शब्दकोश को भी समृद्ध करती चलती है। व्यंग्य की इसी भाषा शक्ति के कारण विद्वानों ने इसे साहित्य के अंदर परमाणु युग एवं साहित्य का विस्फोटक प्रभाव के नाम से अभिहित किया है। व्यंग्य की भाषा जहाँ एक ओर जीवन से जुड़ती है तो दूसरी तरफ वह अपनी बात कहने की बिंदास शैली भी रखती है।

यदि हिंदी व्यंग्य की भाषा का अध्ययन करना है तो व्यंग्य लेखकों की रचना का भी अध्ययन करना होगा। हरिशंकर परसाई ने हिंदी व्यंग्य परंपरा को अपने लेखन द्वारा पुनः पुष्पित-पल्लवित किया। इसके बाद शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल रवीन्द्रनाथ त्यागी, लतीफ घोंघी , प्रेम जनमजेय , शेरजंग गर्ग आदि लेखकों ने अपनी लेखनी से व्यंग्य की बेल को और आगे बढ़ाया है।

भाषा का एक अभिलक्षण है कि वह पैतृक संपत्ति नहीं अपितु अर्जित संपत्ति होती है। एक सच्चा साहित्यकार जीवन की पाठशाला में जाकर ही अनुभव के शिक्षक से , अपनी वैचारिकता से नवीन- नवीन अर्थों को गढ़नी वाली सशक्त भाषा को सीख सकता है। प्रत्येक स्थिति के अनुसार भाषा नई-नई सृजनात्मकता के आयामों को छूती नजर आती है। अनुभव और अभिव्यक्ति का एक साथ संगुफन युग और परिवेश की सही समझ है। अगर हम हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, लतीफ घोंघी आदि की भाषा के संदर्भ में व्यंग्य की भाषा का अध्ययन करने का प्रयास करें तो पाएँगे कि व्यंग्य की भाषा जीवन की समीक्षा होने के साथ-साथ जीवन जगत से साक्षात्कार कराती हुई मनुष्य की चेतना में हलचल पैदा करके जीवन में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करती नजर आती है। प्रत्येक व्यंग्यकार अपनी भाषा के साथ कई प्रकार के प्रयोग करता है जिससे उसकी अभिव्यक्ति और भी पैनी बन जाती है। हिंदी व्यंग्य की भाषा में एक ओर तो समाज की विसंगतियों के प्रति आक्रोश है तो दूसरी तरफ उसकी भाषा में परिवर्तन की उतट लालसा भी है। व्यंग्यकार की भाषा में व्यंग्य उसका सबसे महत्वपूर्ण अस्त्र होता है जिसका निशाना अचूक होता है। व्यंग्य के माध्यम से व्यंग्यकार अपने समूचे युग की विसंगति को उसकी भीतरी तहों में जाकर खोजने का उपक्रम करते हुए उसे अर्थ देता है। वह अपने व्यंग्य से समाज में व्याप्त मिथ्याचारों, पाखंड और असामंजस्य आदि पर प्रहार करता है। साहित्यकार समाज सापेक्ष साहित्य की रचना करता है। जिसमें उसकी चेतना के निर्धारण में राजनीति की भूमिका अहम होती है। साहित्य और राजनीति अलग-अलग नहीं रह सकती। राजनीति जीवन के हर पहलू को प्रभावित करती है। इसी पर व्यंग्य करते हुए प्रेम जनमेजय कहते हैं-

"दिल्ली देश का ही केंद्र नहीं है , अन्य-अन्यों का केंद्र है, भ्रष्टाचार ,अनैतिकता, बेईमानी ,शोषण, हत्या, अन्याय आदि सब कुछ मिलेगा। माई -बाप यहीं तो सब कुछ फलता-फूलता है, यहाँ आपको अपने देश के कर्णधार भी मिलेंगे, जिनके कन्धों

पर आपने पांच वर्षों के लिए अपने देश का भार सौंपा हुआ है, यह दीगर बात है कि उन कंधों पर बंदूकें रखी हुई हैं, जिनका मुँह आपकी ओर है।'' 1 दिल्ली राजनीतिक राजधानी है। संसद में बैठकर नेताओं द्वारा पूरे देश का शासन चलाया जाता है। यह तो ऐताहासिक तथ्य है कि भारत पर किसी न किसी बाहरी जाति का शासन कभी न कभी तो जरूर रहा था, जिन्होंने अपने फायदे के लिए भारतीय जनता का शोषण किया। पहले शोषणकर्ता विदेशी होता था लेकिन अब यहाँ पर लेखक ने नेताओं पर व्यंग्य कसा है कि पहले दिल्ली लुटेरे बादशाहों द्वारा लूटी जाती थी लेकिन अब वह स्वदेशी नेताओं द्वारा लूटी जा रही है।

व्यंग्यकार कमेंट्री शैली का प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के रूप में तो , कभी कथानक एवं वातावरण निर्माण के लिए तो, कभी परिवेशगत विसंगति को उसके समूचे रूप में चित्रित करने के उद्देश्य से तो करते ही हैं साथ में अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते चलते हैं। व्यंग्यकार कमेंट्री शैली के माध्यम से अपने व्यंग्य बाण छोड़ता है। व्यंग्यकार किसी भी विसंगति को बचकर जाने का मौका नहीं देते हैं बल्कि प्रत्येक विसंगति को उसकी संपूर्णता के साथ पाठकों के समकक्ष प्रस्तुत करते हैं। आजकल योग्यता का नहीं सोर्स का जमाना है जिसके पास जितनी पावरफुल सोर्स होगी उसकी सफलता का पैमाना उतना ही अधिक होगा। व्यंग्यकार को तो यहाँ तक शक है कि राष्ट्रीय पक्षी और पशु का तमगा हासिल करने के लिए मोर और शेर ने भारत सरकार को जरूर घूस दी होगी नहीं तो बिल्ली और कुत्ते की क्या सरकार से दुश्मनी थी।

''राष्ट्रीय पक्षी मोर है, राष्ट्रीय पशु शेर। यों इन पदों पर कौआ और सूअर का, क्लेम था पर मोर और शेर ने सोर्स भिड़ा लिया। राष्ट्रीय फूल कमल है और राष्ट्रीय फल (कद्दू क्यों नहीं ?) मगर राष्ट्रीय पुरूष कौन? याने ऐसा पुरूष जिसमें इस जाति का प्रतिनिधि और सर्वव्यापी गुण हो। मैंने इस राष्ट्रीय पुरूष की कल्पना की है। यह राष्ट्रीय पुरूष कपाल पर सोर्सों की लिस्ट चिपकाए हर दफ्तर के सामने खड़ा होकर चिक उठाकर भीतर झाँकता हैं ।''2

व्यंग्यकार की भाषा की सबसे बड़ी शक्ति होती है उसकी कल्पना शक्ति । जिसके लिए प्रायः व्यंग्यकार फंतासी शैली का भी प्रयोग करता है। फंतासी शैली के माध्यम से व्यंग्यकार समाज के बने बनाए ढाँचे को तोड़ता है उसकी सभी पर्तों को उधेड़कर रख देता है। लेकिन कहीं भी यह फंतासी यथार्थ से अलग नहीं रह पाती है । फंतासी से ही व्यंग्यकार जीवन में फीके पड़ चुके रंगों को नवीन संदर्भों से भरने का प्रयास करता है। यथार्थता पर फंतासी का चेहरा लगाकर व्यंग्यकार अपने युग की विसंगतियों को और भी उजागर कर देता है। इस प्रकार फंतासी व्यंग्यकार के मंतव्य को संप्रेषित करने का सशक्त माध्यम है। इस प्रकार की फंतासी शैली का प्रयोग परसाई अपने उपन्यास 'रानी नागफनी' की कहानी में करते हैं । रानी नागफनी और कुंवर अस्तभान की प्रेम कहानी के माध्यम से परसाई ने अपने समूचे युग की शैक्षिक सामाजिक राजनीतिक आर्थिक विसंगति को बखूबी से दिखाया है।

मुहावरों में व्यंग्य करने की ऐसी मारक क्षमता होती है कि जो बात व्यंग्यकार के सीधे तरीके से कहने पर समझ नहीं आती है वह मुहावरे के

प्रयोग से शीघ्र ही समझ में आ जाती है। मुहावरे गागर में सागर भरने का काम करते हैं। मुहावरे की उत्पत्ति प्रायः भावावेग के कारण होती है और व्यंग्यकार अपने आसपास के वातावरण के प्रति आक्रोश में ही भरकर अपनी भाषा को मुहावरे से समृद्ध करने की चेष्टा करता है। अतः मुहावरा का प्रयोग व्यंग्यकार की निजी आवश्यकता बन जाती है। उसके अभाव में अभिव्यक्ति पंगु हो जाती है।

"बिहार साफ-साफ दिखा देता है कि भारतीय संविधान बिन पेंदी का लोटा है, लोकतंत्र का सिक्का जाली है, खोटा है, बहुमत दुधारू का थन है, कैबिनेट सखियों का मधुबन है। विधानसभा व संसद का अधिवेशन रासलीला है, विपक्ष का शोरगुल बंदरबाँट की पत्तल है सरकार की ही खिचड़ी का पतीला है।"3

प्रस्तुत निबंध में निंसदेह मुहावरे व्यंग्यकार के आक्रोश की भाषा बन गए और उनके आक्रोश की सही अभिव्यक्ति भी बन जाते हैं। लेखक ने लोकतंत्र बहुमत कैबिनेट विधानसभा पर सब पर व्यंग्य कसा है कि देश की संसद में जनता के चुने हुए प्रतिनिधि भेजे जाते हैं, ताकि वे देश और जनता के लिए उपयोगी नीतियाँ बना सकें, वहीं नेता संसद में पहुँचते ही अपना उल्लू सीधा करने की कोशिश करते नजर आते हैं। यहाँ लेखक ने स्वंय के कुछ मुहावरे को रचा भारतीय संविधान बिन पेंदी का लोटा तो लोकतंत्र एक जाली खोटा सिक्का है जिसका कोई उपयोग नहीं है। बहुमत दुधारू थन है जिसका उपयोग सभी नेता अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए करते हैं।

साहित्यकारों ने अपने साहित्य में स्थिति के अनुरूप मुहावरों के स्वरूप, उसकी संरचना को उसके अर्थ को अपनी इच्छानुरूप गढ़ा है, जिससे स्थिति में विपरीतता का व्यंग्य का आभास दिखाई देता है। मुहावरों की परंपरागत संरचना में उलटफेर करके व्यंग्यकार ने परंपरागत मुहावरों को नवीन अर्थ छवियाँ देकर अपने मंतव्य के साधन के रूप में प्रयुक्त किया है।

व्यंग्य समय सापेक्ष होता है इसलिए अपने समय की छोटी सी छोटी विसंगति पर व्यंग्यकार सूक्ति के माध्यम से मर्मभेदी जीवन सत्यों, तथ्यों, अनुभवों, आदर्शों को उजागर करता है। सूक्तियों के प्रयोग से व्यंग्यकार अपनी भाषा में गंभीरता और प्रभाव लाता है। सूक्तियाँ व्यंग्यकार की भाषा में शाब्दिक सौंदर्य का ही संधान ही नहीं करती हैं अपितु अर्थ का उत्कर्ष भी करती हैं।

"नारद जी के अब तक जम्मू न आने में एक राज़ और भी है। कोई जमाना था जब सारे ब्रह्मांड में अकेले नारद जी का ही नाम गूँजता था। नारद वृत्ति एकमात्र उनकी ही विरासत थी उस समय उनकी नारदीय कंपनी का कोई दूसरा शेयर होल्डर नहीं था। मगर अब खुदा के फजल से घर-घर में नारद जन्म ले रहे हैं। तथापि पुराने नारद का सिक्का अभी तक मंद नहीं पड़ा है। उनके अब भी निराले ठाठ हैं। रामायण महाभारत युग से लेकर आज तक अकेले नारद जी ने जो जो गुल खिलाये हैं उनको कौन भूल सकता है।4

प्रेम जनमेजय अपने निबंध 'आया महीना मार्च' का में प्रतीक के प्रयोग से शैक्षिक जगत में व्याप्त कुरीतियों का पर्दाफ़ाश करते हैं। कक्षा में जब अध्यापक अपने छात्रों को पढ़ाने की चेष्टा करता है तो प्रायः वह छात्रों का कोपभाजन होता है। दुनिया में अध्यापक और उसकी पुस्तक जैसी उबाऊ कोई दूसरी चीज नहीं होती है, लेकिन परीक्षा के दिनों में वही अध्यापक छात्रों को

उद्धारक नजर आता है। अगर परीक्षा की मुसीबत से उसे कोई बचा सकता है तो वह केवल और केवल उसका अध्यापक है। इसलिए छात्रों को अब अध्यापक अपने गिरिधर गोपाल नजर आ रहे हैं, जिस प्रकार कृष्ण ने अपनी अगुंली से पर्वत को उठाकर सबको इन्द्र के कोपभाजन से बचा लिया था उसी प्रकार छात्रों को भी अध्यापक अब कृष्ण नजर आ रहे हैं जो उन्हें परीक्षा में फेल हाने से बचाकर अभिभावक के कोपभाजन का शिकार होने से बचा सकते हैं। यहाँ अध्यापक रूपी गिरिधर गोपाल और गोकुलवासी रूपी छात्रों का प्रतीकात्मक रूप का प्रयोग किया गया है।

"जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखहिं तिन तैसी। छात्रों की भावनाएं बदल रही है और अध्यापक प्रभु हो रहे हैं। किसी छात्र को वह परीक्षा रूपी राक्षस का संहार करनेवाली चक्रपाणि दिखाई दे रहे हैं तो किसी को परीक्षा रूपी सागर से पार करानेवाली नौका दिखाई दे रही है। छात्राओं को गिरिधर गोपाल दिखाई दे रहे हैं जो अपनी बाल लीलाओं से उनका मन मोह लेते हैं फिर विराट रूप का दर्शन कराके परीक्षा से मुक्त कर देते हैं।" 5

व्यंग्यकार समसामयिक घटनाओं के प्रति तुरंत प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वहाँ वह प्रसंग गर्भत्व के माध्यम से तत्कालीन घटनाओं के प्रति पाठक को सचेत करता नजर आता है, लेकिन एक सीमा यह भी होती है कि यदि पाठक घटना से पहले से ही परिचित न हो तो वह घटना के मर्म तक कठिनता से पहुँच पाता है।

"कृष्ण ने मेरी ओर बड़े अचरज और खीझ से देखा और कहा, " कहाँ ' गये चावल ? तुमने फिर कपट किया। मैंने अपनी दिव्य-दृष्टि से देख लिया था कि भाभी ने मेरे लिए गमछे में चावल बाँध दिये थे।" मेरा मन हुआ कि कह दूँ कि हे मेरे राजमित्र , जिस दृष्टि से तुम मित्रों की पत्नियों को पति के गमछे में चावल बाँधते देखते रहते हो उससे लोगों की गरीबी और भुखमरी क्यों नहीं देखते । पर कुछ सोच कर मैं चुप रहा।" 6

यहाँ पर व्यंग्यकार ने उस पुराकथा को अपना आधार बनाया है जब सुदामा गरीबी के कारण अपनी पत्नी के आग्रह पर चावल गमछे में बाँधकर अपने मित्र द्वारकाधीश से मदद माँगने जाते हैं और जब वे अपने राजा मित्र से पोटली में बँधे चावल छुपाते हैं तो कृष्ण उन्हें उपालंभ देते हैं तब सुदामा मन में सोचते हैं कि यदि दिव्यदृष्टि से बँधे चावल देख सकते हो तो अपनी उसी दृष्टि से गरीबी और भुखमरी क्यों नहीं देख सकते ।

कभी-कभी व्यंग्यकार विशेष संदर्भों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को उनसे भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त कर उनका अर्थ विस्तार कर देता है। इसे क्षेपक कहा जाता है।

"कहां वह जमाना था जब गुरू का दर्जा सबसे ऊँचा माना जाता था चारों आंर गुरु की जयजयकार होती थी। कहां यह जमाना कि गुरु बेचारे तो गुड़ बनकर ही रह गए और चेले गरीबों को तरसाने वाली मंहगी चीनी का रूतबा हासिल कर रहे हैं। वे केवल अपने गुरूओं के उलटे नाम रखकर ही अपने शिष्य धर्म का निर्वाह नहीं कर रहे बल्कि गुरूदक्षिणा के रूप में उनके चरणकमलों में कुछ हूटिंग का प्रसाद भी चढ़ाते रहते हैं।"7

व्यंग्यकार ने अपने समय की नस को पकड़ा जहाँ अध्यापक-छात्र के रिश्तों में अवमूल्यन का दौर शुरू हो गया है, लेखक इस बात से परेशान है

कि जब हमारी शिक्षा में ही खोट है तो हम कैसे नैतिक मूल्यों के आधार पर एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं। पहले एकलव्य जैसे शिष्य थे जो गुरूदक्षिणा के रूप में अपना अगूँठा काटकर अपने गुरू को सप्रेम भेंट कर दिया करते थे। लेकिन अब ऐसी गुरू शिष्य परंपरा आ गयी है जहाँ अध्यापक छात्रों से डरा हुआ रहता है यानि अब गंगा उलटी बहने लगी है । समय इतना विपरीत हो गया है कि आजकल के शिष्य अपने गुंरूओं को कुछ समझते ही नहीं है।

व्यंग्यकारों ने विसंगतियों के प्रति आक्रोश को मार्मिक, सार्थक, सत्य, तीक्ष्ण एंव गंभीर बनाने के लिए अप्रस्तुत योजना का प्रयोग किया है। व्यंग्यकार अपनी भाषा को और भी अधिक परिष्कृत करता हुआ तीव्रतम रूप में साधारण बात को इस प्रकार व्यक्त करता है कि पाठक पर उसका प्रभाव पड़े और व्यंग्य का लक्ष्य बनने वाला तिलमिला उठे।

''हमारे परम प्रिय राष्ट्र को स्वाधीनता की उपलब्धि प्राप्त किए हुए पंचविंशति वर्ष समाप्त हो गए। इस दीर्घ अवधि में देश नाना प्रकार की दिशाओं में अग्रसर हुआ। लौहपथगामनियाँ विद्युत से संचालित होने लगी और उनके गमनागमन सूचक यंत्र भी विद्युत से कार्य संपन्न करने लगे। ग्राम -ग्राम में पत्र प्रवेश पेटियाँ लग गई और चिकित्सालयों की संस्थापना भी हुई। कहीं-कहीं चिकित्सक नहीं है पर वे भी यथासंभव आ ही जाएँगें।'' 8

कितना क्रूर यथार्थ है कि देश में चहुँ ओर विकास है भाप से चलने वाले रेल के इंजन अब बिजली से चलने लगे लेकिन बिना चिकित्सा सुविधाओं वाला हमारा देश अभी भी चिकित्सक और चिकित्सा सुविधाओं का इंतजार कर रहा है। कभी-कभी व्यंग्यकार ब्याजस्तुति के माध्यम से उनकी प्रशंसा करता है जिनकी वह अप्रत्यक्ष रूप से निंदा कर रहे हैं। लेखक अपने अभीष्ट को प्राप्त करने हेतु ब्याजस्तुति के माध्यम से व्यंग्य कसता है।

''मेरे विचार में अब समय आ गया है जबकि घड़ियाल बचाओ अभियान के स्थान पर पति बचाओ अभियान शुरू किया जाना चाहिए। सबकुछ सुधरता जा रहा है मगर पत्नियाँ हैं कि हर माडल पिछले से खराब ही निकल रहा है। आस्ट्रेलिया में ऐसी-ऐसी कार ईजाद कर ली गई है जो मालिक की आवाज पर चलती है, मगर अभी तक ऐसी बीवी नहीं बनी जो मियाँ के कहने के मुताबिक चलती हो।'' 9

स्वातंत्र्योत्तर भारत की जातिगत और भाषागत विषमता को दिखाने के लिए व्यंग्यकार शब्दों की पुनरावृत्ति करवाकर व्यंग्य को और भी अधिक संप्रषेणीय बना देते हैं। यहाँ लेखक हिंदू और हिंदुत्व धर्म के प्रकार बताते हुए कहते हैं कि -

''हिंदुत्व के तीन प्रकार है, नाभिमूल से उठाओ ओंकार! जो गर्व से कहे कि हम हिंदु हैं-वे हिंदु - सिंपल हिंदु ,वोटर-हिंदु, कामन हिंदु है। वो पोस्टर लगाने वाला, आसाराम बापू की पंचलखटकिया अमृत वाणी के लिए दफ्तर से सी एल. लेकर चंदा उगाहने औार रह-रहकर चकित अकस्मात उदघोष करने वाला गर्व से कहो कि हम हिंदु हैं वो सी एच अर्थात् कॉमन हिंदु।''10

व्यंग्यकार अपनी बात को कभी उत्तम पुरूष तो कभी मध्यम पुरूष तो कभी स्वयं आख्याता बन जाता है। इसे आख्यान शैली कहते हैं। इसमें लेखक और पाठक का रिश्ता केन्द्रीय तत्व के रूप में विद्यमान होता है। इसमें लेखक दृश्य के साथ उत्पन्न प्रतिक्रिया को भी व्यक्त करता है।

इस कारण वह आख्यान शिल्प का प्रयोग करता है।

"आज तुम्हारे आगमन के चतुर्थ दिवस पर यह प्रश्न बार-बार मन में घुमड़ रहा है- तुम कब जाओगे, अतिथि ? लाखों मील लंबी यात्रा करने के बाद वे दोनों एस्ट्रानाट्स भी इतने समय चाँद पर नहीं रूके थे, जितने समय तुम एक छोटी-सी यात्रा मेरे घर आए हो। अब तुम लौट जाओ अतिथि! तुम्हारे जाने के लिए यह उच्च समय अर्थात् हाईटाइम है। क्या तुम्हें तुम्हारी पृथ्वी नहीं पुकारती ?"11

इन पंक्तियों में लेखक ने बिना बुलाए अतिथि पर अपनी खीझ व्यक्त की है। इस दृश्य में विश्लेषण , तुलना, क्षोभ जैसी बिना बुलाए अतिथि को भगाने की चिंतन प्रतिक्रियाएँ भी चल रही हैं।

भाषा की महत्वपूर्ण इकाई वाक्य है। व्यंग्यकार वाक्य संरचना करते समय अधिक सतर्क रहता है क्योंकि इन वाक्यों की संरचना से ही वह अपने कथ्य को पाठक के साथ सहजता से संप्रेषित कर सकता है और पाठक के मर्म को भेदकर पाठक को साधारण घटना को भी असाधारण तरीके से देखने की दृष्टि दे सकता है। इसलिए वह कभी दीर्घ, संयुक्त, जटिल, छोटे-छोटे वाक्य क्रियाहीन तो कभी संयुक्त वाक्यों का प्रयोग करता है। इन वाक्यों के माध्यम से व्यंग्यकार स्वातंत्र्योत्तर भारत की शैक्षिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विसंगतियों को दर्शाकर पाठक को अपने आसपास के वातावरण के प्रति सजग करता है। भले ही लेखक ने छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है, परंतु इन वाक्यों में छिपे अर्थ का मर्म बहुत अधिक है। व्यंग्यकार नेता शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए कहता है कि अगर नेता में ता यानि शक्ति चली जाए तो उसके नेतृत्व का बिना के ता के कोई महत्व नहीं होता है।

"नेता शब्द दो अक्षरों से बना है -'ने' और 'ता' । इनमें एक भी अक्षर कम हो तो कोई नेता नहीं बन सकता। नेता बडे परेशान। नेता का मतलब होता है, नेतृत्व करने की ताक़त। ताक़त चली गई, सिर्फ़ नेतृत्व रह गया । 'ता 'के साथ ताक़त गई । तालियाँ खत्म हो गईं, जो 'ता 'के कारण बजती थीं।" 12

सरल वाक्यों के माध्यम से व्यंग्यकार ने उन देशभक्त स्वतंत्रता सेनानियों पर व्यंग्य कसा है जो आजादी से पहले त्याग की राजनीति करते थे और आजादी के बाद भोग की राजनीति करते हैं। यदि उन्होंने आजादी में दस प्रतिशत योगदान दिया है तो आजादी से पचास प्रतिशत प्रतिदान की उम्मीद करते हैं।

"मुझे शिकायत नहीं है देश का बकाया चुका रहा हूँ। स्वतंत्रता आंदोलन में हम जेल नहीं गए थे। जो गए थे वे शक्कर की चाय पीते हैं। हम नहीं गए तो हम गुड़ की चाय पीते हैं। गलती अपनी ही है। मगर तब हमें किसी ने बताया ही नहीं कि अभी जेल चले जाओगे तो आगे शक्कर की चाय पीओगे और मजे में 'कन्सेंट्रेशन कैंप' चलाओगे। उसी देश के नाम पर कोई शक्कर की चाय पीता है तो कोई गुड़ की।"13

मानवीकरण के माध्यम से व्यंग्यकार अपनी भाषा में वक्रता उत्पन्न कर अपनी लेखनी को और अधिक प्रभावपूर्ण और संप्रेषणीय बना देते हैं। हिंदी हमारी राजभाषा जरूर बन गई है लेकिन अभी भी विचार और व्यवहार में अंगरेजी का बोलबाला है। दुख की तो बात यह है कि हिंदी अपने ही घर में घुटकर जीने पर विवश है।

"हिंदी पहले कटी पतंग थी आजादी के बाद जो मर्जी लूटकर हो हल्ला मचाता तनिक दूर तक खींच ले जाता था अब हिंदी फटी पतंग हो गई है- संविधान के जटिल पोल पर फँसी हुई हवाओं के थपेडे में हौले- हौले डोलती और भी तार-तार होती गई अब इसे देखकर पता ही नहीं चलता कि स्वाधीनता संग्राम के खूब खुले नीले आकाश में जब यह दूर-दूर तक उड़ती थी तो इसका वस्तुतः रूपकार कैसा था।"14

पैरोडी में व्यंग्यकार किसी भी स्थिति, घटना के प्रति अपनी कटाक्षपूर्ण टिप्पणी करता है। व्यंग्यकारों ने इस शैली का प्रयोग अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं करके उसके प्रभाव और संप्रेषणीयता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। परसाई ने 'राजनीति का बंटवारा' निबंध में मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियों को थोड़ा सा बदलकर स्वतंत्रता संग्राम में एक बार जेल गए सेठ के उस झूठ पर पैरोडी की है, जहाँ वे अपने नाम से अन्य कवियें से कविताएँ लिखवाकर से छपवाते हैं-

कारागार-निवास स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाय सहज ही संभाव्य है। 15

कभी कभी व्यंग्यकार प्राचीन कथाओं को आधार बनाकर मिथकीय शैली में समाज की बुराईयों पर भी लिखते हैं चाहे कथा का आधार सुना-सुनाया पौराणिक हो, लेकिन उसमें निहित भाव आधुनिक रंग में रंगे हुए होते हैं। जैसे 'एकलव्य का अंगूठा' 'हनुमान की रेल यात्रा ' 'सुदामा के चावल' इन सभी रचनाओं का आधार एक पुरा कथा के पात्र हैं। सुदामा के चावल के माध्यम से लेखक ने द्वारपाल रूपी चपरासी की उस ताकत का दर्शन करवाया है, जो आधुनिक भारत की सबसे बड़ी सच्चाई है। जिसकी मर्जी के बिना कोई आम या खास उसके मालिक से नहीं मिल सकता है। उसका अनुमति पत्र केवल खुरचन यानि घूस देने पर ही मिला करता है।

इसी समय कार्यालय के दूसरे छोर से एक दबंग कर्मचारी चिल्लाया, " अरे कुछ 'खुरचन' का सिलसिला भी है या यों ही मिलने चला आया है।" चारों तरफ से' खुरचन- खुरचन' की आवाजें आनी लगी। 16

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि हिंदी व्यंग्य की भाषा की विकास यात्रा अभी जारी है। वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए नवीन शब्दों को सहज ही गढ़ रही है। व्यंग्य की भाषा इतनी तीखी तेज-तर्रार होती है कि वह परिवेश में व्याप्त विसंगति को उसके समूचे यथार्थ में बयान करने की हिम्मत रखती है। व्यंग्य की भाषा साहस की भाषा है जो विसंगति की आंख में आंख डालकर उससे लोहा लेने की हिम्मत रखती है। व्यंग्य की भाषा आम लोगों की आवाज है। बोली चाहे व्यंग्य की हो लेकिन भाव उसमें समाज के ही मिले होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1 प्रेम जनमेजय, आह दिल्ली! वाह दिल्ली!(मेरी इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ), पृष्ठ 23, अभिरूचि प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 1996

2 हरिशंकर परसाई, राम की लुगाई और गरीब की लुगाई (शिकायत मुझे भी है), पृष्ठ 28, राजकमल प्रकाशन पाँचवा संस्करण 1988

3 गौतम सान्याल (बिहार पर मत हँसो), पृष्ठ 17, राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 2014

4 डॉ.संसारचंद्र, अगर नारद जी जम्मू आते (विदूषक की याद में) पृष्ठ 10, अलंकार प्रकाशन दिल्ली संस्करण 1998

5 प्रेम जनमेजय, आह! आया महीना मार्च का (मेरी श्रेष्ठ इक्यावन व्यंग्य रचनाएँ) पृष्ठ 87, अभिरूचि प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण् 1996

6 हरिशंकर परसाई , सुदामा के चावल (तिरछी रेखाएँ) पृष्ठ 32, वाणी प्रकाशन संस्करण 2006

7 डॉ. संसारचंद, गंगा जब उल्टी बहे (विदूषक की याद में) पृष्ठ, 134 अलंकार प्रकाशन दिल्ली संस्करण 1998

8 रवीन्द्रनाथ त्यागी, सरल हिंदी के पक्ष में एक खुला भाषण (सिंदबाद की अंतिम यात्रा एवं अन्य व्यंग्य रचनाएँ) पृष्ठ 144, प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2008

9 रवीन्द्रनाथ त्यागी, पत्नी प्रसंग (सिंदबाद की अंतिम यात्रा एवं अन्य व्यंग्य रचनाएँ) पृष्ठ 203, प्रभात प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2008

10 गौतम सांन्याल, द न्यू मनोहर पोथी इज दैट क्लियर टू यू (बिहार पर मत हँसो) पृष्ठ 100 राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 2014

11 शरद जोशी, तुम कब जाओगे अतिथि (नदी में खड़ा कवि) पृष्ठ 120, राजकमल प्रकाशन 2012 प्रथम संस्करण

12 शरद जोशी, नेतृत्व की ताकत (घाव करें गंभीर) पृष्ठ 44 राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 2012

13 हरिशंकर परसाई, गुड़ की चाय (शिकायत मुझे भी है) पृष्ठ 48 राजकमल प्रकाशन पाँचवा संस्करण 1988

14 गौतम सान्याल, राष्ट्रभाषा..न..न..न...राजभाषा:हाय हिंदी का तमाशा (बिहार पर मत हँसो) पृष्ठ संख्या 69 राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 2014

15 हरिशंकर परसाई, राजनीति का बँटवारा, (परसाई रचनावली भाग 1) पृष्ठ 157, राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 1985

16 हरिशंकर परसाई, सुदामा के चावल, (तिरछी रेखाएँ) पृष्ठ 32 वाणी प्रकाशन संस्करण 2006